समर्थ
श्रीरामदास

(चरित्र-संक्षेप, प्रशस्ति और पंचरत्नस्तोत्र)

श्रीधर ग्रन्थ-प्रकाशन मण्डल

गङ्गामहल, पटनीटोला, काशी ।

——

दासनवमी, २००६ वि०

❀ श्रीराम समर्थ ❀

चरित्र-संक्षेप

कलौ युगे जनिष्यमाणमन्दबुद्धिमानवान्
निमज्जतो भवाम्बुधौ विलोक्य योऽनुकम्पया।
मरुत्सुतो नृदेहधृग् बभूव बह्वृचां कुले
गुरो! नमामि रामदास पादपङ्कजं तव॥

सन्त-जीवन विश्वमंगल कारक

भारतवर्षकी विशेषता उसकी संस्कृति, नागरिकता और उसके आदर्श नैतिक जीवनका परिचय पाना हो, भारतीय धर्मके सुदृढ मूलको समझना हो तथा उसीके सहारे विश्वमें सुख-शान्तिका साम्राज्य स्थापित करना हो तो हमें अपने पूर्वज ऋषि-मुनियोंके चरित्रपर ध्यान देना होगा। कारण उनका जीवन व्यक्तिनिष्ठ, एकदेशीय न होकर अनन्त और असीम विश्वकुटुम्बकी भावनासे ओतप्रोत होता है। उसमें कुल, जाति, समाज, प्रदेश और राष्ट्रकी अनेकताओंमें एकताकी समन्वयक भारतीय संस्कृति निखर उठती है। उनके चरित्रका एकमात्र लक्ष्य जन-जनको उसके शाश्वत सत्यस्वरूपका परिचय कराकर अखिल विश्वका मंगलसाधन ही होता है।

हमारा भारतीय धर्म आजका सीमित सम्प्रदायमात्र नहीं। वास्तवमें उसका स्वरूप सत्य, सुख और शान्ति ही है। उसीको आप सत्, चित् और आनन्द भी कह सकते हैं जो परमात्माका ही यथार्थ आस्पद या नाम है। इस धर्मका नाश सत्यका ही नाश है। यही कारण है कि भारतीय प्राचीन सन्त-महात्मागण सदा सर्वदा धर्मपरिपालन और धर्मसंरक्षणकी घोषणा करते आये हैं। न केवल घोषणा ही, वरन् अपना सारा जीवन वे उसीकी साधनामें खपाते आये हैं। उसी मूलभूत धर्मतत्वका साक्षात्कारकर विश्वशान्ति-स्थापनका प्रधान कार्य ज्ञानाधिकृत समाजका है जिसे भारतीय भाषामें 'ब्राह्मण' कहा जाता है। इसीलिए उसपर जगद्गुरुत्वका भार दिया गया है। एकमात्र वही रजःप्रधान बलाधिकृतके सहयोगसे शाश्वत धर्मपर आयी आगन्तुक विपत्तियोंको हटा विश्वशान्ति स्थापित करता है। संसारके भौतिक बलोंके अधिकृतों, धनके अधिकृतों और सेवाके अधिकृतोंका भी चरम लक्ष्य इसी ज्ञानाधिकृतके पावन कार्यमें सहयोग देना है तथा इसीमें उसकी वास्तविक कृतकृत्यता है। फिर भी इनमें बलाधिकृतका, जिसे भारतीय भाषामें 'क्षत्रिय' कहते हैं, राष्ट्रकी सुरक्षा और विश्वशान्तिमें ज्ञानाधिकृतके बाद प्रमुख स्थान है। इसीलिए उसे 'प्रत्यक्ष-देवता' भी कहीं-कहीं कहा गया है।

भारतीय धर्मदृष्टि

इस ब्राह्म और क्षात्रतेजकी दो सुदृढ धुराओंपर ही भारतीय राष्ट्र विश्वमें अमर सन्देश देनेके लिए सदा गतिशील रहता है। किसी एकके अभावमें उसकी अपेक्षित गतिशीलता दृष्टिगोचर नहीं होती। भारतीय इतिहासमें इस उपर्युक्त सिद्धान्तके निदर्शनस्वरूप एक नहीं, अनेक शक्तियुगल दीख पड़ते हैं। वशिष्ट और रामचन्द्र, पूर्णब्रह्म श्रीकृष्ण और अर्जुन, आद्य शंकराचार्य और महाराज सुधन्वा, स्वामी विद्यारण्य और महाराज बुक्ककी जोड़ियां इन्हीं निदर्शनोंमेंसे कुछ हैं। इसी तरह अभी-अभी

ब्राह्म-क्षात्र तेज-युति

कुछ शताब्दियों पूर्वकी ही जोड़ी समर्थ रामदास और छत्रपति शिवराजकी है। यवनोंके घोर अत्याचारी शासनसे भारतको मुक्तकर भारतीय धार्मिक, सांस्कृतिक परम्पराकी पुनःप्रतिष्ठाका कार्य यद्यपि छत्रपति शिवराजने किया, फिर भी उनके इस कार्यकी प्राणभूत प्रेरकशक्ति समर्थ स्वामी रामदास ही रहे। उस कालके अनेकानेक भगवद्भक्तोंके हृदय भारतीय धर्म संस्कृतिके हो रहे भारी ह्राससे क्षुब्ध हो गये थे। उन्हींके मूर्तरूप कार्यक्षम संघीभूत तेजःपुञ्जके रूपमें समर्थ रामदासकी ब्राह्मशक्तिका आविर्भाव हुआ और उससे संयुक्त हो शिवराजके क्षात्रतेजने यह तत्कालीन लोकोत्तर कार्य कर दिखाया।

समर्थ अवतारी पुरुष

गीताकार भगवान् श्रीकृष्णके शब्दोंमें जब-जब धर्मग्लानि, अधर्माभ्युत्थान होता और साधु पीडित एवं दुष्ट दुर्दम हो उठते हैं तभी युग-युगमें वे अवतार ग्रहण करते हैं। सिवा उन्होंने यह भी कहा है कि 'यद्यद् विभूतिमत् सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा। तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥' इस दृष्टिसे और समर्थके कार्यजातोंपर दृष्टि देनेपर स्पष्ट हो जाता है कि वे अवतारी पुरुष थे। स्वर्गीय विचारपति रानडे और प्रसिद्ध इतिहासकार श्रीराजवाडे प्रभृति द्वारा तथा अन्यान्य विविध कथा-प्रसंगोंसे समर्थ महावीर हनूमान्के अवतार माने गये हैं, फिर भी चिकित्सकोंके विचारसे भी यह सुनिश्चित है कि समर्थ लोकोत्तर पुरुष थे और उनके किये कार्यजातसे भारत सदा उनका ऋणी रहेगा। ऐसे महापुरुषोंका पुण्यकीर्तन भी हम लोगोंके उज्ज्वल भविष्यका साधक होगा।

हैदराबाद राज्यके औरंगाबाद जिलेके 'आँबड' परगनेके 'जाँब' नामक गांवमें विक्रम संवत् १६६५ की चैत्र शुक्ला रामनवमीके दिन समर्थ श्री-रामदासका अवतार ठीक उसी समय हुआ जिस समय

जन्म, परिवार और शिक्षा

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामने मानुष विग्रह धारण किया था। इनके पिता गांवके तत्कालीन मुखिया (कुलकर्णी) श्रीसूर्याजी पन्त और माता साध्वी श्री-सौ० राणूबाई थीं। दम्पतीको उनकी ३६ वर्षकी कठोर सूर्योपासनाके फलस्वरूप दो पुत्ररत्न प्राप्त हुए जिनमें संवत् १६६२ में आविर्भूत प्रथम पुत्र श्रीगङ्गाधर थे, जो बादमें 'रामी रामदास' नामसे प्रसिद्ध हुए, और दूसरे पुत्र 'नारायण' हुए जो 'समर्थ रामदास' नामसे प्रसिद्ध हैं। समर्थका कुलनाम 'ठोसर' है। जगदात्मा आदित्यके प्रसाद और भगवद्भक्त माता-पिता एवं ज्येष्ठ भ्राताके सहवाससे बालक 'नारायण' का शैशवसे ही विरक्त रहना आश्चर्यजनक नहीं। वास्तवमें 'होनहार बिरवानके होत चीकने पात' प्रसिद्ध ही है। बाल्यकालसे ही इनके मनपर मानव जीवनके चरम लक्ष्य मोक्षमार्गके अनुगामी होनेके संस्कार दृढ़ हो चले। साथ ही साहसके प्रतीक साथियोंके साथ जंगलमें घूमना, वृक्षों-छतों पर चढ़ना, तैरना आदिमें भी उनका शैशव बीता। वे इतने कुशाग्रबुद्धि थे कि किसी भी पढ़ाये पाठको अतिशीघ्र आत्मसात् कर लेते। पांचवें वर्षमें ही इनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ और कुछ ही दिनों बाद पिताका स्वर्गवास हुआ तथा दोनों पुत्र धार्मिक माताकी अभिभावकतामें महापुरुष बनने लगे।

प्रभु रामचन्द्रसे मन्त्रोपदेश

सातवें वर्ष एक दिन समर्थ गांवके एक हनुमान् मन्दिरमें गये और वहां महावीर रामदूत हनूमान्के दर्शनार्थं यह प्रणकर ध्यानस्थ हो गये कि जबतक उनका दर्शन न होगा, विना अन्न-जल लिये यहीं बैठा रहूँगा। उनका दृढ़ निश्चय देख राम-दूत हनूमानूने समर्थको न केवल अपना ही दर्शन दिया, प्रत्युत अपने उपास्यदेव प्रभु रामचन्द्रका भी उन्हें दूर जंगलमें ले जाकर प्रत्यक्ष साक्षात्कार करा दिया। भगवान् रामने उस समय समर्थको राममन्त्रराज 'श्रीराम जयराम जय जय राम'की दीक्षा दी और धर्म-समाजके उद्धारक होनेका वरदान भी दिया। साथ ही अञ्जनीनन्दनको भी आदेश दिया कि 'तुम सदा समर्थकी रक्षा करते रहो।' कहते हैं, तभीसे महावीर हनूमान् समर्थके पीछे-पीछे छायाकी तरह अपना सरक्षण बनाये रहे, जिससे समर्थपर किसी प्रकारकी भौतिक बाधा कार न कर सकी।

सावधानताका उपदेश

यज्ञोपवीत संस्कार और श्रीरामसे दीक्षाके शाणपर चढ़नेके बाद समर्थके अन्तरका वैराग्यरत्न क्रमशः और भी निखर उठ चला। फल-स्वरूप उन्हें संसारनिष्ठ बनाये रखनेके लिए माताने बारह वर्षकी आयुमें उनके विवाहका आयोजन किया। समर्थ यह योजना सुनकर घरसे भाग निकले, पर अन्ततः माताने उन्हें पकड़कर उनसे विवाहकालीन अन्तःपट पकड़ने तककी प्रथातक उनसे वचन-पालनकी प्रतिज्ञा करा ली। जांबसे एक मील दूर 'आसन' गांवके एक सत्कुलकी सुलक्षणा कुमारीके साथ उनका विवाह तय हुआ और 'वर' समर्थ विवाहमण्डपमें जा पधारे। ज्योंही अन्तःपट पकड़ा गया और ब्राह्मणोंने 'शुभमंगल, सावधान!' कहा समर्थ विप्रमुखसे निकली इस विराट् पुरुषकी आज्ञाको मान सर्वथा सावधान हो गये और भाग निकले। लोगोंने उनका पीछा किया, पर वे उनकी आंखोंसे ओझल हो गये और तीसरे दिन सीधे नासिक-पञ्चवटी पहुँचे।

पञ्चवटीमें आकर समर्थ वहांके 'टाकली' नामक गांवमें भगवद्भजन और तपस्यामें जुट पड़े। बारह वर्षतक कठोर तपस्साधना द्वारा उन्होंने गायत्रीपुरश्चरण और राममहामन्त्रके तेरह कोटि जपका सुकृत अर्जन किया। इस तपस्याकालमें उनका दैनिक कार्यक्रम प्रातःसे दोपहरतक नदीमें खड़े होकर जप करना, फिर नासिक-पञ्चवटीमें भिक्षा (मधुकरी) के लिए जाना, भोजनोपरान्त तीसरे पहर पुराणश्रवणकर वहांसे टाकली लौट आना और शेष समयमें भगवद्भजन करते रहना था।

तपस्या

बारह वर्षकी इस कठोर तपस्याके बाद समर्थ तीर्थाटनके लिए निकल पड़े। वे काशी, प्रयाग, अयोध्या, मथुरा, वृन्दावन, प्रभास, द्वारका आदि होते हुए श्रीनगर (काश्मीर) गये। वहांसे वे बदरीनाथ, केदारनाथ तथा मानससरोवर गये। वहांसे जगन्नाथपुरी और रामेश्वर होते हुए लंका पहुँचे। लौटते समय दक्षिणके अनेक तीर्थोंमें होते हुए गोकर्ण, महाबलेश्वर, पम्पा, परशुराम क्षेत्र, पण्ढरपुर आदि होते हुए पुनः पञ्च-वटीमें अपने स्थानपर आ गये और वहां भगवान्का दर्शनकर अपनी बारह वर्षकी तीर्थयात्राका सारा पुण्य प्रभुके चरणोंमें समर्पित कर दिया।

तीर्थयात्रा

अपनी इस तीर्थयात्रामें समर्थ जहां धार्मिक दृष्टिकोणसे प्रेरित थे वहीं देशकी वर्तमान विषम परिस्थितिका सम्यक् अध्ययन और उसके निवा-रणार्थ लोकसंग्रहका कार्य भी करते रहे। यही कारण है कि वे इस तीर्थयात्रामें जहां-जहां जाते, भगवान् राम या रामभक्त हनूमान्का मन्दिर तथा मठ स्थापित करते और उसका भार वहींके अधिकारी पुरुषपर सौंपते थे। इस तरह उन्होंने भारतभर लगभग ग्यारह सौ मठ-मन्दिर बनवाये। तत्कालीन हिन्दू-समाज और हिन्दूधर्मकी अवनतिको रोक देश-धर्मके उद्धारार्थ उन्होंने जनताको निवृत्तिमार्गके अनुयायी बनानेकी अपेक्षा भक्तिप्रधान

लोकसंग्रह

प्रवृत्तिमार्गपर ही ले जानेका निश्चय किया तथा तदनुसार ही अपने कार्यका रूप मोड़ा।

समर्थके कार्योंपर गंभीर दृष्टि देनेसे उनका यह अभिप्राय स्पष्ट हो जाता है कि वास्तविक भारतीय धर्म और संस्कृतिके प्रतिष्ठानार्थ राजनीति अपने हाथमें लेनी चाहिये। राजनीतिमें स्वस्थ, भगवद्भक्त आस्तिकोंका बाहुल्य करनेपर ही देश, धर्म, संस्कृतिकी रक्षा सम्भव है। किन्तु साथ ही उसके पीछे भगवदधिष्ठानपर उनका अनिवार्य आग्रह रहा।

समर्थ द्वारा उपदिष्ट लोकसंग्रहीके ग्यारह गुणोंपर ध्यान देनेपर यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। उन्होंने व्यवहारक्षेत्रमें लोकोद्धारार्थ उतरे लोकसंग्रहीके लिए निम्नलिखित ग्यारह गुण अनिवार्य बताये हैं—(१) परिभ्रमण, (२) चालना विवेक या विचार, (३) प्रयत्न, (४) धीरता, (५) सावधानता, (६) क्षमा और शान्ति, (७) प्रसन्न रखना, (८) सात्विक बाह्यरंग, (९) उपदेश्य विषयका स्वानुभव, (१०) शक्ति और (११) श्रीरामोपासना। समर्थकी इसी लोकसंग्राहक और लोकोद्धारक दृष्टिको देखते हुए अभिजन कहते हैं कि उनके द्वारा प्रतिष्ठापित मठ न केवल अध्यात्मप्रचारके केन्द्र थे, प्रत्युत वे सच्चे अर्थमें सैनिक 'बारीकें' थीं। उनके हनूमानकी मूर्तिके नीचे अतुल शस्त्र-भण्डार रहता था जिसका समयपर उपयोग हो सके। जो भी हो, इतना निश्चित है कि समर्थ सभी ओरसे सावधान थे। तीर्थयात्राके समय पैठनमें उन्होंने अपनी माताका दर्शन किया और उन्हें दृष्टि दे महामुनि कपिलकी तरह आत्मबोध द्वारा आश्वस्त किया। अन्तमें संवत् १७०१ के लगभग कृष्णातीरपर 'चाफल' नामक स्थानपर मुख्य मठ बनाया।

अब समर्थकी कीर्तिदुन्दुभि सारे देश, दिगदिगन्तोंमें व्याप्त हो चुकी थी। अनेकानेक साधु उनकी अद्‌भुत सामर्थ्य सुन उनके निकट आते और अध्यात्म-चर्चासे लाभ उठाते। उन्हीं दिनों सन्त तुकारामकी भी कीर्ति-कौमुदी भारतीय आकाशमें चमक रही थी। तत्कालीन मराठा देशवीर छत्रपति शिवाजी उन्हें गुरु बनानेका निश्चयकर उनके पास पहुँचे तो सन्त तुकारामने उन्हें समर्थसे दीक्षा लेनेका आदेश दिया। समर्थ कहीं एक स्थानपर अधिक समय नहीं रहते थे। वे कभी चाफलमें रहते, कभी ईश्वरचिन्तनार्थ जंगलों, पहाड़ोंमें चले जाते तो कभी शिष्योंको ले धर्मप्रचारार्थ देशदेशान्तर घूमते रहते। उनके प्रमुख शिष्योंमें कल्याण स्वामी (पूर्वाश्रमके करवीरके सूबेदार पाराजी पन्तके भानजे 'अम्बाजी') सदा समर्थके साथ ही रहते, जबतक विशेष अवसरोंपर गुरुदेव उन्हें अलग रहनेका आदेश न देते थे। अन्ततः शिवाजीने बहुत खोजके बाद एक गूलरके वृक्षके नीचे समर्थको पाया जहां वे शिवाजी द्‌वारा अपना शिष्य बनानेके लिए भेजा प्रार्थना-पत्र ही पढ़ रहे थे। वहीं समर्थने इस योग्य शिष्यको मन्त्रोपदेश दे अनुगृहीत किया। साथ ही समर्थने अपने योग्य शिष्य शिवाजीको राजनीतिका अपना अभीष्ट उपदेश दे उसे कार्यान्वित करनेका भी आदेश दिया। शिवाजी जो 'छत्रपति शिवाजी' हुए उसकी नींव समर्थका उनपर वरदहस्त ही था।

छत्रपति शिवाजीकी दीक्षा

इधर समर्थने कल्याण स्वामीको लेखक बना अपने अनेक ग्रन्थोंका प्रणयन किया जिनमें दासबोध, मनोबोध, करुणाष्टक, पुराना दासबोध, आत्माराम, रामायण, ओवी चौदह शतक, स्फुट ओवियां, पञ्चीकरण योग, षड्रिपु, चतुर्थमान, मान-पंचक प्रमुख हैं। रामायणमें सुन्दरकाण्ड और युद्धकाण्ड की ही घटनाएं हैं। दासबोध अब हिन्दीमें भी हिन्दीके पुराने सेवक श्रीरामचन्द्र वर्मा द्‌वारा अनूदित और कई संस्करणोंमें प्रकाशित हो

ग्रन्थ प्रणयन

चुका है। उसमें प्रत्येक कोटिके मनुष्यके लिए मार्गदर्शक उपदेश हैं। हिन्दी भाषियोंको उसके अधिक गुण बताना जरूरी नहीं।

संवत् १७२२ के लगभग एक दिन समर्थ एकाएक सताराके किलेमें शिष्योंसहित भिक्षार्थ निकल पड़े। छत्रपति शिवाजीने अपने गुरुके योग्य भिक्षा देनेके निमित्त लेखकसे सारे राज्यका दानपत्र लिखवाया और उसीसे गुरुकी झोली भर दी तथा स्वयं राज्य छोड़ उनकी सेवाकी अभिलाषा व्यक्त की। समर्थने उस दिन शिवराजके कन्धेपर झोली रख भिक्षा मंगवायी, प्रसाद खिलाया और अन्तमें यह कहकर कि 'राज्य मैं लेकर क्या करूंगा, यह तुम क्षत्रियोंका ही कर्तव्य है, तुम ही संभालो', उसे लौटा दिया। दानको वापस करनेकी अक्षमता व्यक्त करनेपर उसपर अपने शासनका प्रतीक भगवाध्वज समर्पितकर उसको शिवाजीको लौटा ही दिया। शिवराज समर्थके राज्यके संचालक रूपमें शासन करते हुए देश-धर्मरक्षा करते रहे।

गुरुको राज्य भिक्षा और उनसे भगवा ध्वजांकित राज्यप्रसाद

संवत् १७३७ में शिवाजीकी मृत्युसे समर्थ जैसे विरक्तको भी योग्य शिष्यके विरहका अनुभव होकर ही रहा। तभीसे वे भगवद्-भजन में लगे रहते। शिवाजीके पुत्र संभाजीके राज्याभिषेकमें भी वे स्वयं नहीं गये और उन्हें एक पत्र भेज सद्धर्मनिष्ठ एव पिताके मार्गानुगामी होनेका आदेश दिया, पर देशके दुर्भाग्यसे संभाजी उन उपदेशोंका उचित पालन न कर सके।

गुरुको शिष्य का वियोग

विक्रम संवत् १७३३ में समर्थ सज्जनगढ़पर आये और वहां पांच वर्ष-तक विश्राम किया। इस विश्राममें उनका लक्ष्य अपनी सहज स्थितिमें रहकर पारमार्थिक जीवन बिताना ही रहा। इसी वर्षके फाल्गुन कृष्ण नवमी शनिवार, (२२ जनवरी १६८२) को मध्याह्नमें समर्थ इसी सज्जनगढ़ मठके सेजघरमें भगवान् रामचन्द्रका भजन करते उनके दिव्य रूपमें मिल गये। उस समय उनके पास तपस्याके समय समर्पित उद्धव गोस्वामी, अक्का ये दो शिष्य थे। निर्वाणके समय इनके द्वारा विलाप करनेपर समर्थने श्रीमुखसे कहा—

सज्जनगढ़में विश्राम और निर्वाण

माझी काया आणि वाणी। गेली म्हणाल अन्तःकरणी।
परि मी आहे जगज्जीवनी। निरन्तर॥
आत्माराम दासबोध। माझे स्वरूप स्वतःसिद्ध।
असतां न करावा खेद। भक्तजनीं॥

अर्थात् मेरा स्वरूप 'दासबोध' रूपमें विद्यमान है, उसीसे पथप्रदर्शन पायें। कल्याण स्वामीको उस समय गढ़से बाहर भेज दिया गया था। समाधि होनेके बाद आनेपर कल्याण स्वामीने भारी विलाप किया तो समर्थने समाधिसे उत्थित हो, दर्शन दे उन्हें अपना सदा अस्तित्व दिखा दिया।

———

श्री श्रीधर स्वामीकी समर्थप्रशस्ति

'ब्रह्मसदन'—नामांकित श्रीकाशीक्षेत्र जिस निरतिशयानन्दरूप परममंगल ब्रह्मतत्त्वके सदनत्वेन अपना परिचय कराता है, उन परमपावन महादेव श्रीविश्वनाथका ही श्रीसमर्थ तृतीय अवतार हैं। नीलकण्ठ भगवान्‌ने अपने अमोघ ब्रह्मचर्य, अघटित सामर्थ्य, अनुपम श्रीराम-भक्ति और विश्वकल्याणोद्दिष्ट निज दिव्य जीवनका जिस महाबल, वज्रतनु, श्रीहनुमान्‌के रूपसे विश्वमंगलप्रद महत्त्वपूर्ण आविष्कार किया, उन्हींके श्रीसमर्थ रामदास स्वामी अवतार हैं। प्रसिद्ध पाश्चात्य इतिहासज्ञ स्मिथने, विदेशी और विधर्मी होते हुए भी, निष्पक्षतासे जिनका यथार्थ गुणगौरव 'महान् शिवाजी' नामक ग्रन्थ लिखकर किया उन हिंदुपदपादशाहीके संस्थापक श्रीशिव छत्रपतिके श्रीसमर्थ रामदास स्वामी सद्गुरु थे। श्री-कृष्णार्जुनकी द्वापरयुगीन धर्मोद्धारक जोड़ी पुनरपि विक्रमकी सत्रहवीं शताब्दीमें श्रीसमर्थ-शिवाजीके रूपमें प्रकट हुई थी।

शिव-विष्णुकी जोड़ी अभिन्न है, यह तत्त्व पुनरपि अपने भक्तोंके दृष्टि-पथपर लानेके उद्देश्यसे श्रीसमर्थ श्रीरामनवमीके दिन उसी 'अभिजन' मुहूर्तमें जगतीतलपर प्रकट हुए। धन्य वह जम्बुग्राम और धन्य वहांकी प्रजा! धन्य हैं उन मातापिताको जिन्होंने कुलपरम्परागत अनन्तकालीन तपस्याका सम्पूर्ण फल श्रीसमर्थ रूपमें पाया। श्रीसूर्याजी और श्रीराणू-देवी ऐसा इस पुण्यपावन दम्पतीका नाम था। नवप्रसूत उस विश्वोद्धारक बालकका नाम भलीभांति विचारकर उनके भावी यश, कीर्ति, प्रताप, वैभवके अनुसार 'नारायण' रखा था। इस भारतभाग्य धर्मसूर्यका उदय विक्रम संवत् १६६५ चैत्र शुक्ला नवमीके दिन दक्षिण भारतमें हुआ।

भारतके इतिहासमें वह सुवर्णदिन है। उनका बाल्यका सभी जीवन अघटित है। जिस प्रकार श्रीगणेशजीको विद्या पढ़नेमें कुछ आयास नहीं हुआ, उसी तरह श्रीसमर्थके विषयमें समझना चाहिये।

'नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्य क्रियते वने।
विक्रमार्जितसत्वस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता॥'

अपने अवतारकार्यकी चिन्ता श्रीसमर्थ बाल्यावस्थासे ही करने लगे थे। केवल पांच वर्षकी ही अवस्था थी, किसी कामके लिए श्रीराणूदेवी हाथमें दीपक लेकर तहखानेमें गयी थीं। वहां अंधेरेमें श्रीसमर्थ किसी चिन्तामें मग्न थे। माताने पूछा—'बेटा! किसकी चिन्ता करते हो?' वह अनुपमेय बालक माताके प्रश्नका उत्तर देता है—'मां, मैं विश्वकी चिन्ता करता हूँ (आई, चिन्ता करितो विश्वाची,—समर्थप्रताप)। हनुमान्‌जी इनके बचपनके साथी थे। उपनयन संस्कारके अनन्तर चार पांच दिनके अन्दर ही श्रीसमर्थ भगवान् श्रीरामसे अनुगृहीत हुए।

कवि मोरोपन्त लिखते हैं—'सभीके लग्नसमारम्भमें द्विजगण 'सावधान' कहकर जगाते हैं, किन्तु अभीतकके विश्वइतिहासमें वह शब्द श्रीसमर्थने ही कान देकर सुना।' 'सावधान'के समयतक लग्नमण्डपमें रहनेका माताको दिया हुआ वचन पूर्ण हो गया और श्रीसमर्थ जगदुद्धारके लिए सावधान होकर लग्नमण्डपसे निकल पड़े। कैसे, किस प्रकार वे कहां गये, किसीको मालूम नहीं हुआ। भगवान् श्रीशंकरने अपना ब्रह्मचर्य, जो श्रीहनुमान्‌जीके अवतारमें दिखाया था, यहां उससे भी बढ़कर अपनी निर्मोह अवस्था और ब्रह्मचर्यनिष्ठा लग्नमण्डपसे विश्वकल्याणार्थ निकलकर बतलायी। श्रीसमर्थप्रशिष्य गिरधरजी कहते हैं—'श्रीसमर्थदेवने यह अघटित कार्य किया। मैंने नाना पुराणोंका अवलोकन किया है। किसी अवतारमें ऐसी स्थिति नहीं दिखायी दी। इतना अनंत मनोजयका दिव्य सामर्थ्य इसी अवतारमें प्रकट हुआ है।' 'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।' इस तत्वको मनमें रखकर श्रीनासिक-पञ्चवटीमें

द्वादशवर्षतक तप किया। 'तपसा किं न सिद्धयति ?' इसकी सत्यता अपने चरित्रसे ही दिखाकर इसीका उपदेश विश्वहितचिंतकोंको दिया। तपश्चर्याके कालमें ही पतिसह सती जानेको निकली हुई दीन युवतीके पति को, नमस्कार करनेपर, जीवनदान दिया। श्रीसमर्थानुग्रहसे इस दंपतीको दश पुत्र हुए। इसलिए उनको 'दशपुत्रे' यह नाम मिला। अभी भी इसी नामसे उनका वंश चला आ रहा है। ज्ञात हुआ है कि इस नामसे श्री-काशीक्षेत्रमें एक गली आज भी विद्यमान है। श्रीसमर्थने देशकी सब परिस्थिति तीर्थाटन द्वारा देख ली। द्वादश वर्षकी आयुमें विवाहमंडपसे विश्वहितकी दीक्षा लेकर बाहर निकले। विश्वकार्यके लिए, जनसामान्यको शिक्षा देनेके लिए द्वादश वर्षतक अतिघोर तपस्या की। द्वादश वर्षतक तीर्थयात्राकर, तीर्थों तथा तीर्थयात्रासाधनका महत्व बतलाया और साथ ही साथ लोक-स्थितिका सूक्ष्म निरीक्षण भी किया। अनेक संतमहात्माओंको धर्मकार्यके लिए प्रोत्साहित किया। असंख्य शिष्य बनाये। छत्तीस वर्षकी आयुसे तिहत्तर वर्षकी आयुतक धर्मकार्य तथा देशकार्य दोनों ही किये।

'श्रीरामजन्मभूमिका रक्तरंजित इतिहास'में लिखा है—"जन्मभूमिपर बलिदान होनेवाले वीर बाबा श्रीवैष्णवदासजी शिवाजीके गुरु समर्थ श्री-रामदासजी महाराजके ही शिष्य थे। आपके साथ दस हजार जबर्दस्त, चिमटाधारी साधुओंका एक गिरोह रहता था, जो समस्त उत्तर भारतमें घूम-घूमकर भारतीय संस्कृतिका प्रचार एव विधर्मियोंसे देशके उद्धारके लिए जनताको तैयार करता था। आपने औरंगजेबके समय अयोध्याके साधुमहात्माओं, गृहस्थों तथा सूर्यवंशी क्षत्रियोंको साथ लेकर जन्मभू-मिके लिए ३० आक्रमण किये थे। आपका अन्तिम आक्रमण श्रीगुरु गोविंदसिंहजीके साथ हुआ था।" श्रीकल्याणस्वामी लिखते हैं—"पृथ्वीके ऊपर समर्थ-शिष्य कितने थे उसकी गिनती कोई नहीं कर सका।" विष्णु-दासजीके एक चरित्रसे इतना दिव्य प्रकाश मिलता है तो असंख्य शिष्यों द्वारा जो जागृति हुई होगी उसकी कल्पना एक सर्वज्ञ शक्तिमान् परमात्मा ही कर सकते हैं। मुख्य कार्यकारी ऐसे ग्यारह सौ मठ थे। श्रीसमर्थ एका-

दशरुद्र श्रीहनुमानजीके अवतार थे। अतः इस संप्रदायमें एकादश संख्या का बहुत महत्व है।

श्रीसमर्थस्वामीजीकी जन्मभूमि 'जांब' अर्थात् जंबुक्षेत्र, तपोभूमि नासिक पंचवटी और कार्यभूमि अखिल भारत ही था। श्रीसमर्थ चाफल क्षेत्रमें रहते थे। श्रीसमर्थकार्यका मुख्य स्थल यही था। शिष्योंके समेत स्वयं श्रीसमर्थ स्वामिमहाराजने अपने करकमलोंसे ही यहांके श्रीराममंदिर तथा मठका निर्माण कराया। दृष्टान्तके द्वारा जान लेनेपर अंगापूरके दहमेंसे निकाली हुई श्रीराममूर्तिकी उस मंदिरमें स्थापना की। अतिमनोहर ध्यान है। श्रीरामकी मूर्तिके साथ महिषासुरमर्दिनीकी जो मूर्ति निकल आयी वह श्रीसज्जनगढ़में स्थापित की। श्रीसज्जनगढ़ श्रीसमर्थस्वामीजीका विश्राम-स्थल है।

नित्य-नियमके उपरान्त श्रीसमर्थ महाराज रोज 'कहाँ धर्मच्छल हो रहा है' यह दिव्यदृष्टिसे देख वहाँ शीघ्र ही मनोवेगसे पधारते थे। यहां भगवान् श्रीसमर्थ स्वामीजीके कुछ लीलानुग्रहोंका वर्णनकर आनंद लूटेंगे। इन कुछ उदाहरणोंसे उनकी कार्य-पद्धतिका अल्पपरिचय भी मिलेगा।

श्रीसमर्थको मातृदर्शनार्थ जांबक्षेत्रको जाते समय ज्ञात हुआ कि दक्षिण भारतके इंदूरबोधन नामक स्थानमें ब्राह्मणोंको कल्पनातीत कष्ट दिया जा रहा है। उसी समय वे अदृश्य होकर वायुवेगसे निर्दिष्ट स्थल पर जा विराजमान हुए। वहाँके यवन सूबेदारने पर्जन्यके लिए ब्राह्मणोंको अनुष्ठान करनेका आग्रहकर, पर्जन्य न हो तो उनके लिए फाँसी की शिक्षा सुनायी थी। बेचारे विप्रगण नगरके बाहर सरोवरमें स्थित होकर मन ही मन भगवान्की प्रार्थना करते हुए पर्जन्यसूक्तका पाठ कर रहे थे। श्रीसमर्थजीने सबको आश्वासन देकर सरोवरसे बाहर निकाला और एक शिलापर अपनी छाटी डालकर उसपर सबको मिलकर रुद्राभिषेक करनेको कहा। साथ ही साथ क्षुधार्त ब्राह्मणोंके भोजनकी व्यवस्था भी करायी। अल्पकालमें ही नभोमंडल

कृष्णमेघावृत होकर जल बरसने लगा। लघुरुद्रका अभिषेक पूर्ण होनेके पूर्व ही उस शिलाके ऊपर वीर हनुमानजीकी बहुत सुन्दरमूर्ति प्रकट हुई जो अद्यापि विराजमान है। वहाँ सूबेदारके आग्रहसे एक मठका निर्माण भी हुआ।

मिरज नगरमें श्रीजयरामजीका कीर्तन हो रहा था। 'साधु-संत जिस मार्गसे जाते हैं उस मार्गसे यदि कोई जाय तो उसको श्रीरामदर्शन अप्रयास शीघ्र होता है' ऐसा वचन विषयके ओघमें ही उनके मुखारविन्दसे निकल गया। गस्त डालने आये सूबेदारने उतना ही सुनकर लिख लिया और प्रातःकाल श्रीजयराम स्वामीजीको पालकीके साथ बुलावा भेजा। बड़े सम्मानसे सिंहासनपर बिठाकर गत रात्रिकी लिखी बात सुनायी और कहा—'मैं आपके साथ किसी भी कठिन मार्गसे आनेको तैयार हूँ, कृपया श्रीरामदर्शन कराइये। यदि दर्शन नहीं करायेंगे तो बलात् मुस्लिम धर्मकी दीक्षा दी जायगी।' श्रीजयराम स्वामीजीने अपने गोपाल नामक शिष्यको श्रीसमर्थजीके पास भेजा और यथाभूत वार्ता सुनानेको कहा। इधर सूबेदार साहबको गुरुजीके आनेतक प्रतीक्षा करनेको कहा। जयरामजीके रक्षणार्थ श्रीसमर्थ दौड़ आये और सूबेदारको दर्शन दिया। यथाभूत वार्ता सुनकर श्रीसमर्थजीने दुर्गतटके सूक्ष्म रन्ध्रसे, जिसमें केवल बन्दूककी नली ही प्रवेश कर सकती है, योगसामर्थ्यसे निकलकर नीचे प्रवेशद्वारमें स्थित हो उसी रन्ध्रसे जयरामजीको निकल आनेको कहा। वे भी गुरुकी आज्ञाका पालनकर बाहर आ श्रीसमर्थजीके पास खड़े हो गये 'साधु-सन्त जिस मार्गसे जाते हैं, उस मार्गसे ही श्रीरामदर्शनके लिए आना चाहते हो तो उसी रन्ध्रसे आओ, भगवान् यहां दर्शन देनेको उपस्थित हैं' ऐसा सूबेदारसे कहा। सूबेदारजी यह देखकर आश्चर्यचकित और भयकातर हो उनकी शरण आये और भक्तिसे श्रीसमर्थजीके सेवक हो गये। उनकी प्रार्थनासे मठकी स्थापना हुई जो मिरजमठ नामसे आज भी ख्यात है।

ऐसे ही तीर्थयात्राके समय श्रीसमर्थ स्वामी श्रीकाशीक्षेत्रमें प्रवेशकर श्रीविश्वनाथके दर्शनको गये। वैदिकमंडली रुद्राभिषेक कर रही थी। कोई

विजातीय साधु होंगे, इस आशंकासे उनको अन्दर आने नहीं दिया गया। श्रीसमर्थ वैसे ही लौट आये और किसी पेड़के नीचे बैठ गये। इतनेमें ही श्रीविश्वनाथ अपने सामनेसे अदृश्य हो गये हैं ऐसा देख घबड़ाकर ब्राह्मण-मंडली श्रीसमर्थजीकी खोजमें इतस्ततः निकल पड़ी। थोड़ी खोजके बाद देखते हैं तो विश्वनाथजी स्वयं समर्थजीका अभिषेक स्वीकार कर रहे हैं। अपराधकी क्षमा मांगनेपर यथापूर्व स्वस्थानपर लिंग दृष्टिगोचर होने लगा। आश्चर्यचकित करनेवाली ऐसी बहुत-सी उनकी लीलाएं हैं। श्रीसमर्थजीका अवतार होनेसे ही श्रीसनातनधर्मका रक्षण हुआ, आर्यसंस्कृति टिक सकी।

❀ श्रीगुरवे नमः ❀

स्तोत्रकी भूमिका

परब्रह्म परमात्माका यथार्थ रूप जानकर उसके साथ एकरूप होनेके लिए सुनियोजित रूपसे आगे बढ़नेका मार्ग ही धर्मपथ है। अखण्ड स्वरूपमें सदा संतृप्त रहकर निरतिशय आत्मानन्दका निर्विकल्प अनुभव करना ही धर्माचरणका सारभूत अन्तिम उद्देश्य है। मुमुक्षुओंके लिए अपने त्रिकालाबाधित निरवधि स्वरूपकी विस्मृतिसे ही गोचरीभूत भ्रमरूप स्वभिन्न विषयोंका, आत्मनिष्ठासे सर्वथा विलय कर देना ही यथार्थ धर्म या मोक्षमार्ग है। स्वभिन्न कल्पित जडविषयक वासनारूप अधर्मको जड़से नष्ट कर देना ही अनन्तशक्तिप्रद स्वधर्मका लक्ष्य है। सत्यस्वरूपकी प्राप्ति एकमात्र तदारोपित भ्रमकी निवृत्तिसे ही संभव है। मानवका कर्तव्य है कि अहंस्फूर्ति, विषय-संकल्प और भ्रम—इनमें व्याप्त एक अखण्ड चैतन्यका ही जीवनभर शोध करता रहे। चैतन्यसे अहंस्फूर्ति, अहंस्फूर्तिसे दृश्यसंकल्प और उसीसे इस दृश्यजगत्का निर्माण हुआ है। यह दृश्यजगत् अचेतन है, अतएव 'जड' कहलाता है। साधक द्वारा क्रमशः दृश्य जड (विषय) का संकल्पमें, संकल्पका अहंस्फूर्तिमें और अहंस्फूर्तिका चैतन्यमें विलयकर अखण्ड सच्चिदानन्द रूपसे निर्विकल्प होनेका अभ्यास ही स्वरूप-धारणा है। इसमें एकमात्र स्वरूपप्राप्ति ही लक्ष्य रहता है। विषयोंमें आसक्त बन स्वरूपको भूल जाना मानव जीवनकी सफलता कदापि नहीं है।

भाववृत्त्या हि भावत्वं शून्यवृत्त्या हि शून्यता।
ब्रह्मवृत्त्या हि पूर्णत्वं तस्मात् पूर्णत्वमभ्यसेत्।

ब्रह्मस्वरूपकी धारणासे पूर्णताको प्राप्त होना चाहिये। चित्स्वरूप आत्मतत्त्वका सम्पूर्ण अभ्यासकर आत्मक्रीड होना जीवका प्रथम कर्तव्य है। यही श्रेष्ठ कर्तव्य धर्ममार्ग कहलाता है। उसीका एक नाम 'सत्य सनातन' भी है।

पूज्य गुरुदेव श्रीधर स्वामी महाराजने यह गूढार्थ 'समर्थ पञ्चरत्न-स्तोत्र' समर्थ रामदासजीके यथार्थ स्वरूपको ध्यानमें रखकर उस लक्ष्यकी ओर हम सभीको ले जानेके उद्देश्यसे ही, ग्रथित किया है। निश्चय ही यह श्लोकपञ्चक पञ्चरत्न हैं। इससे यह प्रेरणा प्राप्त होती है कि अपने शरीरको श्रीसमर्थकी सेवामें लगाकर, मनको उनकी उपासनामें लीनकर और बुद्धिको उनके यथार्थ स्वरूपदर्शनमें विनियुक्तकर बुद्धिसे भी अतीत चैतन्यको प्राप्त किया जाय। निश्चय ही इस स्तोत्रके पठन और मनन करनेसे परमानन्दकी प्राप्ति होती है।

पूज्यपाद श्रीधर स्वामी महाराजका स्थूल परिचय तो सामान्यतः सर्व-साधारणको है ही, किन्तु हम भावुकोंको उनके यथार्थ रूपको ही जानकर धन्य होना चाहिये जो उनकी उपासनाका प्रमुख आधार है। जिस तरह अपने गुरु समर्थ रामदासजीको महाराजजीने उनके यथार्थ रूपमें प्रस्तुत स्तोत्रमें स्मरण किया है, हमें भी अपने इन गुरुदेवके यथार्थ रूपका दर्शन करना चाहिये। तभी हम कृतकृत्य हो सकेंगे।

अबतकके विवेचनपर ध्यान देनेसे स्पष्ट हो जाता है कि इसमें विशेषतः श्रीसमर्थके निवृत्तिमार्गीय स्वरूपपर ही जोर दिया गया है। इसपर साधारणतः यह प्रश्न उठता है कि इस तरह समर्थ रामदासकी तरह निवृत्तिमार्गके अनुयायियोंसे प्रवृत्तिधर्मकी रक्षा कैसे संभव है? किन्तु जरा गंभीर होनेपर उत्तर भी मिल जाता है। यह सत्य है कि शुद्ध चैतन्यमें

कार्यका किञ्चित् भी स्पर्श नहीं। फिर भी उस चैतन्यसे आश्रित अहंस्फूर्ति तो कार्योत्पादक शक्तिसे युक्त रहती ही है। इस तरह इन ज्ञानियोंके पूर्ण पदको प्राप्त कर लेनेपर भी वह चैतन्याश्रित अहंस्फूर्ति जगत्के प्रारब्धवशात् निर्लिप्त हो ज्ञानीको भी कार्याभिमुख बना उससे प्रवृत्ति-धर्मकी रक्षा कराती ही रहती है। जीवन्मुक्तोंका व्यावहारिक कार्यदर्शन भी इसी सिद्धान्तानुसार संगत होता है। भगवान् सूर्यनारायणके उदित होनेपर जिस प्रकार अन्धकार नष्ट करनेके लिए पृथक् यत्न अनपेक्षित होता है उसी प्रकारके ज्ञानियोंके उदयके बाद अज्ञाननाश पृथक् करणीय नहीं होता।

भावुक साधक इन्हीं शब्दोंमें पूज्य गुरुदेव श्रीधर स्वामी महाराजके यथार्थ स्वरूपका बोध प्राप्त कर सकते हैं।—श्रीधर ग्रन्थप्रकाशन मंडल।

श्री श्रीधर स्वामीके प्रकाशित ग्रन्थ

श्रीधर ग्रन्थप्रकाशन मण्डल, काशी द्वारा परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्य श्री श्रीधर स्वामीके अबतक निम्नलिखित ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं।

१—श्रीगणेश स्तोत्र
२—श्रीशारदा, स्तोत्र
३—श्रीराम मंत्रराज स्तोत्र
४—श्रीरामभद्र स्तोत्र
५—श्रीविष्णु स्तोत्र
६—श्रीविश्वनाथ स्तोत्र
७—श्रीशिवोहंऽ स्तोत्र
८—श्रीदेवी स्तोत्र
९—श्रीकृष्ण स्वोत्र
१०—श्रीव्यंकटेश स्तोत्र
११—श्रीदत्ताष्टक, दत्तप्रार्थना, दत्तस्तवराज
१२—प्रातःस्मरण
१३—श्रीशिवशांत स्तोत्र तिलकम्

———

श्री श्रीधर स्वामी
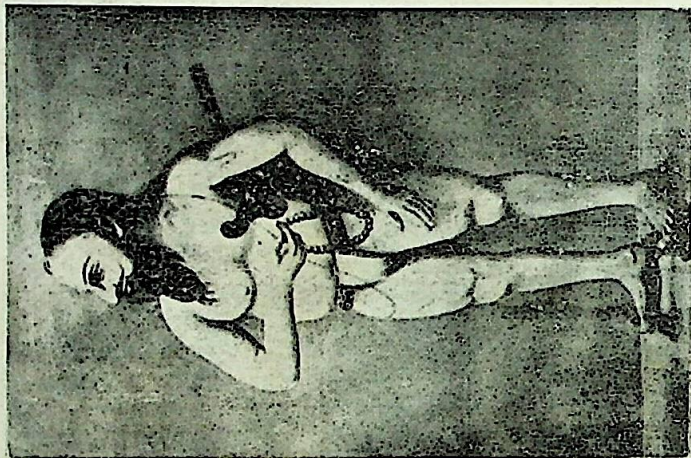
श्री समर्थ रामदास
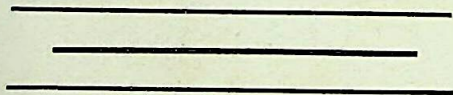
॥ श्रीरामदासगुरवे नमः ॥

समर्थपंचरत्नस्तोत्रम्

आदर्शान्तरबिंबितं खलु यथा दृश्यं मृषैव स्फुटम्
तद्वद्विश्वमिदं विभाति सकलं यस्मिन् परे वस्तुनि ।
चित्सामान्यसदेकतो नच कदा यस्मिन्विकारःक्वचित्
तां वन्दे गुरुरामदासममलं सच्चित्स्वरूपं शिवम् ॥१॥

आदर्शान्तरबिंबितं दृश्यं दर्पणके भीतर प्रतिभासित दृश्य, यथा खलु जिस तरह सचमुच, मृषा एवं (भवति) मिथ्या ही होता है, तद्वदेव उसी तरह, इदं सकल विश्व यह विविध नामरूपात्मक सचराचर जगत, यस्मिन् परे वस्तुनि (बिंबितं मिथ्यैवेति) स्फुटं विभाति सबसे परे जिस ब्रह्म वस्तुमें प्रतिबिंबित होते हुए भी स्पष्ट रूपसे मिथ्या है । चित्सामान्य-सदेकतः मैं हूँ इस अपनी जानकारीके सर्वसामान्य अस्तित्वके तथा एक-रूपताके कारण, कदा (अपि) क्वचित् यस्मिन् विकारः न च कभी भी कहीं भी (अपनेमें प्रतिबिंबित उस दृश्यमें रहते हुए भी दर्पणमें जिस तरह कुछ विकार नहीं होता उसी तरह अपनेमें प्रतिबिंबित उस जगद्दृश्यमें आप रहते हुए भी) जिस परब्रह्ममें कुछ विकार नहीं होता, तं सत् त्रिकाला-बाधित (निरालंब), चित् स्वसंवेद्य (स्वयंप्रकाश) स्वरूपम् आत्मभूत ऐसे अमलं अत्यंत शुद्ध (निरुपाधिक), शिवम् नित्यसुख, नित्य कल्याण, शिवरूप, गुरुरामदासं वन्दे श्रीगुरु रामदासजीको नमस्कार करता हूँ ।

(मरुत्सुतो नृदेहधृग् बभूव) श्रीसमर्थ रामदासजी जो, हिंदुपदपाद-शाहीके संस्थापक श्रीशिवाजी महाराजके गुरु माने गये, हनुमानजीके अवतार थे और हनुमानजी (शिवस्तु हनुमान् स्मृतः) शिवजीके अवतार हैं। इस दृष्टिसे श्रीरामदासजीको श्रीशिवरूप मानकर भी यहां(शिवं वन्दे) ऐसा प्रयोग किया गया है। ॥ १ ॥

बीजस्यान्तरवर्तिवृक्षसदृशं विश्वं यदेतन्महत्
यस्यां सूक्ष्मतयाधितिष्ठति पुरा माया मृषा सा परम्।
यच्चाच्छादयतीव चित्रमिति तद् यत्सत्तया व्याकरोत्
तं वन्दे गुरुरामदासममलं सच्चित्स्वरूपं शिवम् ॥२॥

बीजस्य अन्तर्वर्तिवृक्षसदृशम् बीजमें वृक्षकी तरह, यत् एतत् महत् विश्वम् जो यह विस्तृत जगत्, पुरा पहले (जगत्की उत्पत्ति जब नहीं हुई थी तब) यस्यां सूक्ष्मतया अधितिष्ठति जिसमें सूक्ष्म रूपसे रहता है, सा माया वह अनिर्वचनीय माया, परम् फिर (सृजेयमिति) जगत् उत्पन्न कर-नेका संकल्प होनेपर, यत्सत्तया जिसकी सत्ताके आधारसे, तत् (अपनेमें बीजरूपसे स्थित) उस अव्यक्त जगत्को (जिसमें सुखका आभासमात्र है), मृषा मिथ्या, चित्रम् इति विविध नामरूप द्वारा ऐसे सर्वाश्चर्यरूपमें, यं च आच्छादयति इव जिस अपने अधिष्ठानको मानो छिपाती ही है इस प्रकारसे, व्याकरोत् स्पष्टकर आंखोंके सामने रखती है, तं वन्दे, ऐसे मायासे परे त्रिकालाबाधित (निरालंब) स्वसंवेद्य(स्वयंप्रकाश) आत्मभूत,अत्यन्त शुद्ध, निरुपाधिक, नित्य सुख, नित्यवलक्षण, शिवरूप श्रीगुरु रामदासजीको नम-स्कार करता हूं। ॥ २ ॥

सृष्ट्वाऽध्यासत एव विश्वमखिलं जीवेशबंधादिकम्
सा यस्मिन्किल भाति सूर्यकिरणे मायामृगांभो यथा।
यत्स्मृत्यैव पुनः स्वचेष्टितमिदं त्यक्त्वैत्यभावं स्वयम्
तं वन्दे गुरुरामदासममलं सच्चित्स्वरूपं शिवम् ॥३॥

(किसी सत्य वस्तुमें तद्विरुद्ध अन्य वस्तुकी भ्रमसे जो मिथ्याभावना की जाती है, उस आरोपको अध्यास कहते हैं) अध्यासतः-इस अध्याससे (नित्यनिर्विकल्प अरूप, अनाम, अपनेमें आप ही रहनेवाले अद्वितीय सद्वस्तु ब्रह्ममें आरोपित), जीव ईश बंध आदिकम् जीव, ईश, बंध, मोक्ष, सुख-दुःख, कामक्रोध, स्त्री-पुरुष, इत्यादि भावनायुक्त, अखिलं विश्वं सृष्ट्वा विविध विचित्र यह अखिल विश्व निर्माण करके, सा माया (अपने कार्यसे व्यक्त होनेवाली) वह माया, सूर्यकिरणे मृगांभः यथा सूर्यकिरणों में मृगजलकी भांति, किल निश्चय ही (जिस ब्रह्मप्रकाशमें मिथ्या ही), भाति दिखाई दे रही है। [जिसके प्रकाशसे मृगजल प्रतीत होता है उस सूर्यदेवमें वह कभी भी उत्पन्न नहीं होता,इसस्मृतिके तरह जिसके प्रकाश रूप 'अहमस्मि' मैं हूँ इस ज्ञानसे ही नाना नामरूप, गुणकर्म, जातिधर्म हर्ष-शोक, प्रिय-द्वेष्य, भय-अभय, अपना-पराया इत्यादि भावनाएं उत्पन्न करनेवाला जगत् देहके अन्दर मनको और देहके बाहर मनसे आंखोंको प्रतीत होता है, वह देहस्थित 'मैं हूँ' इस आत्मस्मृतिके लक्ष्यभूत सर्वाद्य नित्य-निर्विकार परब्रह्ममें कभी भी नहीं हो सकता और वही मैं हूँ, यह मेरा सहज रूप है, इस प्रकार] यत्स्मृत्या जिसके स्मरण मात्रसे, स्वचेष्टितं इदं त्यक्त्वा स्वकृत इस खेलको मिटाकर माया, पुनः स्वयं अभावं एति फिर स्वयं आप ही अभावको प्राप्त होती है, ऐसे त्रिकालाबाधित (निरालम्ब), स्वसंवेद्य (स्वयंप्रकाश), आत्मभूत, अत्यन्त शुद्ध, (निरुपाधिक) नित्यसुख, नित्यकल्याण, शिवरूप श्रीगुरु रामदासजीको नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥

रज्ज्वां सर्पविभासवद् बत मृषा मायेति यस्मिन् परे
ब्रह्माहं निजवेदनेन ननु सा विद्येति सम्भाव्यते ।
जीवोऽहन्त्विति भावनेन हि तथाऽविद्येति च ख्यायते
तं वन्दे गुरुरामदासममलं सच्चित्स्वरूपं शिवम् ॥४॥

रज्वां सर्पविभासवत् रस्सीमें सर्पाभासकी तरह, यस्मिन् परे जिस सबसे बड़ी ब्रह्म वस्तुमें, माया इति मृषा जो माया अपने विद्या–अविद्या इन दो रूपोंके सहित मिथ्या ही है वह माया, ब्रह्म अहं इति निजवेदनेन मैं ब्रह्म हूँ इस निज रूपके ज्ञानसे, विद्या इति संभाव्यते विद्या इस नामसे समझी जाती है, तथा हि जीवः अहं इति भावनेन उसी प्रकार मैं जीव हूँ इस भावनासे अविद्या कही जाती है । ऐसे त्रिकालाबाधित (निरालंब), स्वसंवेद्य (स्वयप्रकाश), आत्मभूत, अत्यन्त शुद्ध (निरुपाधिक), नित्य-सुख, नित्यकल्याण, शिवरूप श्रीगुरु रामदासजीको नमस्कार करता हूँ ।

या मा सा माया जो मिथ्या है वही माया कहलाती है, 'यया तदक्षर-मधिगम्यते सा विद्या' जिस 'अहं ब्रह्म' ज्ञानसे वह अविनाशी ब्रह्म समझा जाता है उस मायाके दूसरे रूपको विद्या कहते हैं । इच्छामात्र-मविद्येयम् इच्छारूप ही अविद्या है । 'अनित्य-अशुचि-दुःख-अनात्मसु नित्य-शुचि-सुख-आत्मख्यातिः अविद्या' विनश्वर, अशुद्ध, दुःख, अनात्मरूप देहमें शाश्वत पवित्र सुख और आत्मरूपकी भावना ही अविद्या है । 'देहोऽहमिति संकल्पः सत्यजीवः स एव हि' मैं देह हूँ यह सङ्कल्पयुक्त ज्ञान ही जीव कहलाता है । 'अविद्योपाधिरयं जीवः विद्योपाधिरीश्वरः' अविद्या उपाधिसे जीव और विद्याके उपाधिसे ईश्वर कहलाता है । 'मायाऽविद्ये विहायैव उपाधिः परजीवयोः । अखंडं सच्चिदानंदं परब्रह्म विलक्ष्यते' ईश जीवोंकी माया अविद्या उपाधि त्यागकर ही अखंड सच्चिदानन्द परब्रह्म अपने यथार्थ रूपसे लक्ष्यमें लाया जाता है ॥ ४ ॥

अन्यत्किंचन विद्यते न हि यतो यत्स्वात्मरूपं ध्रुवम्
मायाकल्पितदेशकालकलना यस्मिन्न चित्रीकृता ।
अद्वैतामृतसौख्यसिन्धुमगमद् धीर्यस्य बोधात्परम्
तं वन्दे गुरुरामदासममलं सच्चित्स्वरूपं शिवम् ॥५॥

अबतक 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः' इस सिद्धान्तका निरूपण दृष्टान्त द्वारा कहकर 'मायामात्रमिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः' न तु तद्द्वितीयमस्ति, एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म, नेह नानास्ति किंचन, इस उपनिषद्के अन्तिम सिद्धान्तको इस श्लोकमें कहते हैं ।

यतः जिस परब्रह्मको छोड़, अन्यत् किंचन न हि विद्यते और कुछ है ही नहीं, यत् स्वात्मरूपं ध्रुवम् निश्चय ही जो आत्मरूप है, यस्मिन् जिसमें, मायाकल्पितदेशकालकलना मिथ्या मायासे ही मानी गयी देश-काल आदि भेदकल्पना, न चित्रीकृता चित्रित नहीं हुई, यस्य बोधात् जिसका ज्ञान होनेपर, बुद्धि अहंस्फूर्ति, अद्वैत–अमृत–सौख्यसिंधुम् अगमत् अद्वितीय सुखसागरको पाकर उसीमें ही एकरस हो गयी । ऐसे त्रिकालाबाधित (निरालंब), स्वयंवेद्य (स्वयंप्रकाश), आत्मभूत, अत्यन्त शुद्ध निरुपाधिक, नित्यसुख नित्यकल्याण, शिवरूप श्रीगुरु रामदासजीको नमस्कार करता हूं ।

पञ्च रत्नात्मकमिदं स्तोत्रं पावनमुत्तमम् ।
पठेद् गुरुमुखाच्छ्रुत्वा मुक्तिः स्याद् गुर्वनुग्रहात् ॥

यह उत्तम पञ्चरत्नात्मक पावन स्तोत्र जो गुरुमुखसे श्रवणकर पठन करेगा उसे श्रीसद्गुरुकी कृपासे निरतिशयानंदावाप्तिरूप मोक्ष होगा ।

इति श्रीसमर्थ रामदासानुगृहीत रामपदकञ्ज भृङ्गायमान
श्री श्रीधरस्वामि विरचितं भाषानुवाद सहितं श्री-
समर्थ पञ्चरत्नस्तोत्रं सम्पूर्णम्